भारतीय साहित्य एवं सामासिक संस्कृति

रवीन्द्रनाथ मिश्र

हमारा भारतीय साहित्य सामासिक संस्कृति से अनुप्राणित है। जिसकी परंपरा लगभग पांच-छः हजार वर्षों से आज तक सतत विद्यमान है। संस्कृति अपने व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण मानव सभ्यता की उपलब्धियों का संयुक्त खजाना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं का ही दूसरा नाम संस्कृति है। भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय, देश में एक साथ इतनी संस्कृतियों, धर्मों, और आचार-विचार का समन्वय हुआ है कि इस देश में संस्कृति का समन्वित और मिश्रित स्वरूप अब स्थिर हो गया है। जिस तरह सागर अनंत नदियों की जलराशि को समाहित कर विशालता अर्जित करता है, उसी तरह भारतीय संस्कृति ने भी कई चिंतनधाराओं, कई विचार शैलियों और न जाने कितनी व्यवहारगत असमानताओं को अपने भीतर पचाकर अनूठी समन्वयात्मकता का परिचय दिया है। भारत की इस बहुआयामी संस्कृति को ही सामासिक कहा गयी है जिसमें चिंतन, सृजन, भाषा कल्पना और आचरण की तमाम विभिन्नताओं के बावजूद एक अद्‌भुत सामासिकता लक्षित होती है।"

भारतीय जनजीवन में व्याप्त अनेकता में विद्यमान सांस्कृतिक समीकरण ही इस सामासिक संस्कृति की मूलभूत विशिष्टता है। संस्कृति और साहित्य के निर्माण में नदियों, समुद्रों, पहाड़ों, वृक्षों, फूल-पौधों, ऋतुओं, जीवन-जंतुओं, विविध प्राकृतिक संपदाओं, वेद-पुराणों, उपनिषदों, संस्कृत-ग्रंथों, संत-फकीरों, कवियों, विभिन्न जातियों, भाषाओं, संप्रदायों, लोक-जीवन के तीज-त्यौहारों, प्रथाओं, परिवेशगत मान्यताओं आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

गंगे च यमुनेचैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे, सिन्धु, कावेरी जलेस्मिन सन्निधिम कुरु॥

इस श्लोक का पाठ भारत में उत्तर से दक्षिण एवं पूरब से पश्चिम तक विशेषकर मांगलिक अवसरों पर किया जाता है। कालिदास ने 'कुमारसंभवम' में हिमालय की वंदना की है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु लगभग सभी भारतीय भाषाओं में नदियों एवं पहाड़ों पर साहित्य लेखन की परंपरा चलती रही। अभी हाल में ही वागीश

शुक्ल ने नदियों पर लिखी गई कविताओं का संकलन प्रकाशित किया है। वस्तुतः ये हमारी सामासिक संस्कृति की धरोहर हैं।

हमारा देश भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि दृष्टियों से बहुकोणीय है। एक साथ कई धर्मों, कई संप्रदायों, कई जातियों, कई भाषाओं, कई आचार-विचारों आदि के समन्वय से बना है इस विशाल भू-खण्ड भारत का मानचित्र। इसकी तस्वीर को बनाने में विभिन्न विचारधाराओं, परंपराओं, आस्थाओं, जीवनमूल्यों आदि का विशिष्ट स्थान है। भारतीय साहित्य में सामासिक संस्कृति की परंपरा का उदगम वेदों से लेकर आज तक सतत विद्यमान है।

भक्तिकाल में जब हिंदी में कबीर निर्गुण ईश्वर की उपासना में शरीर को ही मंदिर बनाकर सारी सामाजिक विषमताओं को दूर करने पर बल दे रहे थे तब पंजाब में नानकदेव, तेलुगू में वेमना, मराठी में नामदेव, कश्मीरी में लल्लेश्वरी आदि भी वही कार्य कर रहे थे।

सूरदास की कृष्ण भक्ति के साथ-ही-साथ तेलुगु में पोतन्ना, गुजराती में नरसी मेहता, बंगाल में चंडीदास, मलयालम में नम्पूतिरि, कन्नड में कनकदास, उड़िया में जगन्नाथ दास आदि कृष्ण के लोक रंजन एवं नारी चेतना वाले स्वरूप को उभार रहे थे। इसी प्रकार जब गोस्वामी तुलसीदास अपने 'रामचरित-मानस' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के व्यक्तित्व को साकार कर रहे थे तो उसी तरह बंगाल में कृतिवास, उड़िया में बलरामदास, असमिया में शंकरदेव, मराठी में एकनाथ, तमिल में कम्बन, मलयालम में एषुत्तच्छन, नेपाली में भानुदत्त आदि रामकाव्य रच रहे थे। भक्तिकाल के भारतीय साहित्य में सामयिक संस्कृति की यह अनूठी मिसाल थी।

आधुनिक युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाँति तेलुगू में वीरेशलिंगम पंतुलु, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, गुजराती में नर्मद, उड़िया में फकीर मोहन सेनापति, असमिया में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, मलयालम में केरल वर्मा आदि ने अपने-अपने साहित्य के माध्यम से नवजागरण की ज्योति जलाई। छायावादी दौर में लगभग सभी भारतीय भाषाओं में स्वच्छंदतावादी भाव की कविताएँ लिखी गईं। कालान्तर में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक विचारधारा का प्रस्फुटन संपूर्ण भारतीय भाषाओं में हुआ। प्रेमचंद और शरतचंद के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का ज़िक्र समान रूप से हुआ है।

कालिदास के 'ऋतुसंहारम' में वर्णित 'कुटज' जैसे छोटे से विरवे के माध्यम से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जीवन, साहित्य और संस्कृति के समन्वय का अद्‌भुत चित्र खिंचा है।

भित्त्वा पाषाणपिठरं छित्वा प्राभज्जनो व्यथाम।
पीत्त्वा पातालापानीयं कुटजश्चुम्बते नभः॥

साहित्य जहां सत्यम्, शिवम् एवं सुंदरम् के सामंजस्य के साथ-साथ जीवन संघर्ष को प्रेरित और प्रोत्साहित करता है, वहीं हमारी आत्मा का विस्तार भी करता है। जीवन को गढ़-गढ़ कर सुडौल और सुन्दर बनाता है। हमारी वृत्तियों का परिष्कार एवं परिमार्जन करता है।

भारतीय राज्य भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से परस्पर भले ही भिन्न हो, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से उनके विचारों, संवेदनाओं, क्रिया-कलापों, रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों एवं लोक-व्यवहारों में आश्चर्यजनक समानता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी 'भारत तीर्थ' कविता में भारतभूमि को महा मानव समुद्र कहा है।

हे आर्य, हे अनार्य आओ, आओ हिंदू-मुसलमान।
आज आओ तुम अंगरेज, खीष्टान आओ॥
मन को पवित्र कर आओ ब्राह्मण, सबके हाथ पकड़ो।
हे पतित, आओ, अपमान का सब भार उतार दो॥
मां के अभिषेक के लिए शीघ्र आओ।
सबके स्पर्श से पवित्र किए हुए तीर्थ जल से॥
मंगलघट तो अरी भरा ही नहीं गया है।
इस भारत के महामानव के सागर-तट पर॥

बंगला के गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की भांति गोवा में मराठी और कोंकणी के नामवंत कवि बाकीबाब बोरकार की 'हिंद देवते' कविता में सामासिक संस्कृति के स्वरूप को देखा जा सकता है।

सगले धर्म, सगले वंश घेतले तुलें होटी,
अमृताये परस गोडी, तुज्या दुदा घोटी।
देवय पसुन लुब्ध जावन आयलो तुज्या पोटी,
धन्य अशें स्तन्य तुजें संजीवन-म्हुर्ते॥
पूर्व तुजें दिव्य, दिव्य त्यायपरस फुडार,
तो सचित्र गे आमच्या रथ दोळयांमुखार।
तो घडोक, सतत आमी, जांव जिवार उदार,
दी अशें अनंत धैर्य सदय वरदवन्ते॥

अर्थात् हे हिंद देवते! तूने सम्पूर्ण धर्म और वंश को अपने आंचल में संजोया है। तेरे दूध में अमृत-सी मिठास है। संजीवनी बूटी की तरह तुम्हारा स्तन्य धन्य है। यही कारण है कि ईश्वर ने स्वयं लुब्ध होकर यहाँ जन्म लिया है। तुम्हारा पौराणिक इतिहास तो दिव्य है ही उससे भी अधिक दिव्य है भविष्य। हमारे समक्ष रथ पर सजी हुई तुम्हारे भविष्य की सुंदर एवं सचित्र झांकियां विद्यमान हैं। हमें ऐसा अनंत धैर्य का वरदान दीजिए ताकि हम अपने प्राणों की आहुति देकर भविष्य के यथार्थ को साकार कर सकें।

हमारे यहाँ यवन, शक, हूण, अरब, तुरुक और यूरोप की अनेक जातियां आयीं और उन्होंने हमारे साहित्य और संस्कृति को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया। यह प्रक्रिया आज भी गतिशील है। भारतीय संस्कृति सदैव से परिवर्तनशील रही है। उसमें युगानुरूप समन्वय की भावना जाती है। जब हम भारतीय साहित्य शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा संकेत उस मूल मनोवृत्ति, स्थानीय चेतना और शाश्वत भारतीयता से है जो संकीर्ण सांप्रदायिकता और भाषाई कट्टरता से ऊपर उठने पर स्पष्ट परिलक्षित होती है। राष्ट्रीय एकता एवं समाजवाद की सुदृढ़ स्थापना के लिए भारतीय साहित्य के विभिन्न अवयव हिंदी, उर्दू, बंगला, कोंकणी, मराठी, गुजराती, मलयालम आदि भाषाओं के साहित्य में समन्वय स्थापेत करना ही होगा। इनमें से किसी एक को अलग नजरिए से देखने पर हमारी सामसिक संस्कृति पर गहरा आघात होगा।

वस्तुतः भारत की संस्कृति उदात्त भावनाओं, मानवीय मूल्यों, सह-अस्तित्व, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव, दया, सत्य, लोकमंगल, सर्वे भवन्तु सुखिनः आदि की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। यह सांस्कृतिक देन एक दो वर्षों की नहीं अपितु हजारों वर्षों की है। यहाँ हिंदू, बौद्ध, पारसी, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि अनेक होते हुए भी एक ही भावधारा से जीवनी शक्ति प्राप्त करते रहे हैं। आचार की दृष्टि से विभिन्न धर्मावलम्बियों और संप्रदायों में निस्संदेह भिन्नता रही है किन्तु विचारों के धरातल पर वे कहीं-न-कहीं एक दूसरे से जुड़े हैं। यही कारण है कि भारत की संस्कृति को सामासिक संस्कृति कहा गया है। इस सामासिक संस्कृति को साहित्य सदियों से मुखरित कर रहा है।

वेदों की कर्मकाण्डता, उपनिषदों की वैचारिकता एवं पुराणों की भक्तिभावना को भारतीय साहित्य में देखा जा सकता है। रामायण, महाभारत और श्रीमदभागवत ने जहाँ एक ओर इन भाषाओं के साहित्य को कथावस्तु की विपुल सामग्री प्राप्त की है वहां भक्ति आंदोलन ने एक नई सामाजिक विचार-दृष्टि। इसके अतिरिक्त गीता एवं षटदर्शनों ने हमारे साहित्य को वैचारिक परिपक्वता दी। कालिदास, बाण, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष आदि संस्कृत कवियों ने भी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में राम और कृष्ण के चरित का गान हुआ है और आज भी हो रहा है। रामायण की रचना आमतौर पर लगभग सभी भाषाओं में हुई है। राम-कृष्ण हमारी सामासिक संस्कृति के उन्नायक रहे हैं और आज भी हैं।

पौराणिक रचनाओं के बंगला रूपान्तरों में प्राचीनतम कृति 'कृत्तिवास' की रामायण है। कालांतर में रघुनंदन गोस्वामी ने 'राम रसायन' नाम से रामायण की रचना की। 10वीं शताब्दी में बंगला की प्राचीनतम साहित्यिक रचनाओं का प्रचार 'डाक और खना' ने मौखिक रूप से किया। इनके वचन नीति, सामाजिक विषय, ज्योतिष, कालज्ञान, शकुनविचार आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। इन विषयों से जुड़ी हुई रचनाएँ लगभग सभी भारतीय भाषाओं में पाई जाती हैं। 'डाक' के नाम से प्रचलित वचन और पद सारे असम में प्रचलित हैं। उन्हें 'डाकार बचन बेदार बानी' (डाक के वचन वेदों की वाणी) कहा जाता है। 'डाक' के वचन असम में ही नहीं उड़िया, बंगाल और बिहार में भी सुने जाते हैं।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव असमिया संस्कृति तथा साहित्य में मध्ययुगीन पुनरुत्थान या जागरण के प्रतीक माने जाते हैं। उनका महत्त्व असम के लिए ठीक नहीं है, जो बंगाल के लिए महाप्रभु चैतन्य का, मध्यदेश के लिए रामानंद और वल्लभाचार्य का, पंजाब के लिए गुरु नानक और महाराष्ट्र के लिए नामदेव, तुकाराम एवं संत ज्ञानेश्वर का। भक्ति आंदोलन ने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को झंकृत किया। इसके द्वारा संतों, फकीरों एवं भक्त कवियों ने दलित और नारी वर्ग को एक नवीन दृष्टि प्रदान की। गुजरात के 'अखा' एवं 'प्रेमानंद' ने कबीर की भांति धर्म के मिथ्या पाखण्ड, जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था की खुलकर आलोचना की।

दक्षिण भारत की चार भाषाओं एवं साहित्य का विकास कुछ भिन्न स्थितियों में हुआ। तमिल तथा कन्नड़ 10वीं शताब्दी के पूर्व ही समृद्ध साहित्यिक भाषा हो चुकी थी। तमिल के पास ईसा पूर्व तीसरी शती तक का साहित्य उपलब्ध है। इस युग की लिखी गई 'तोलकप्पियम' नामक व्याकरण ग्रन्थ और 'पाटिनपाट्टु' नामक काव्यसंग्रह उपलब्ध है। कन्नड की प्राचीनतम रचना नृपतुंग का आलंकारिक ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' है। तेलुगू साहित्य की परंपरा इतनी अधिक प्राचीन नहीं है किंतु वहाँ भी साहित्यिक शैली का विकास 13वीं शती के लगभग हो चुका था। मलयालम साहित्य का विकास 16वीं शती के आसपास माना जाता है। कन्नड, तेलुगू और मलयालम ने विपुल मात्रा में संस्कृत शब्दों को आत्मसात किया है। इस दृष्टि से तमिल अल्प संस्कृत शब्दावली ग्रहण कर रूढ़िबद्ध भाषा रही है। सामासिक संस्कृति की दृष्टि से देखें तो लगभग सभी भारतीय भाषाओं का संबंध संस्कृत भाषा से है। संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी कहा गया है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य जिस समय पनप रहा था उस समय भारत में राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में काफी उथल-पुथल हो रहा था। उत्तर भारत में जहाँ नाथपंथियों और दूसरे संतों ने सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति का आवाहन किया, वहां दक्षिण भारत में आलवार भक्तों ने, रामानुज जैसे दार्शनिकों ने सामाजिक क्रान्ति की नींव डाली। मोटे तौर पर आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय 10वीं सदी माना जाता है।

इस्लामी संस्कृति के प्रचार ने मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पर अपना समुचित प्रभाव डाला है और यहां के साहित्य, धर्म-साधना, दार्शनिक विचारधारा, खान-पान, रहन-सहन एवं वेशभूषा आदि को प्रभावित किया है। इस्लाम एक ऐसी धार्मिक मान्यता को लेकर आगे बढ़ रहा था, जिसमें उपासना के क्षेत्र में कोई भेदभाव नहीं था जोकि सभी दलितों और पतितों को गले लगाने का उद्घोष कर रहा था। जिसने कि रामानुज, माध्व, निम्बार्क, बल्लभ, चैतन्य आदि सगुण भक्त आचार्यों की जातपांत, सामाजिक रूढ़ियों एवं उपासना के नियमों को झकझोर कर रख दिया। कबीर, नामदेव, नानक, अखा, प्रेमानंद आदि भारतीय भाषाओं के संतों एवं फकीरों ने अपने समता मूलक विचारों के तहत सामासिक संस्कृति की भावना को प्रबल बनाया।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का मध्ययुगीन साहित्य जिस नई सामाजिक क्रान्ति को लेकर उत्पन्न हुआ उसे भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आंदोलन कहा गया है। यह आंदोलन हिंदी में कबीर, जायसी, सूर, मीरा, तुलसी एवं बंगला, उडिया और असमिया में चंडीदास, सरलदास और महाप्रभु शंकरदेव तथा गुजराती एवं मराठी में नरसी मेहता, मीराबाई, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास आदि की रचनाओं में तथा दक्षिण भाषाओं के भक्तिपरक साहित्य में वैचारिक और भावात्मक रूप से प्रतिबिम्बित हुआ है। भक्ति आंदोलन ने उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक के जनमानस को सामासिक संस्कृति के सूत्र में पिरो दिया। दरअसल हमारी सामासिक संस्कृति उस हार के समान है जिसमें विविध वर्ण, रंग के पुष्प अपनी सुगन्ध से भारत माँ के गले को सुशोभित कर रहे हैं।

भारतीय साहित्य में बंगला, हिंदी और उर्दू ने आधुनिक नवजागरण का स्वागत पहले किया। असमिया और उडिया में इस चेतना के उदय का श्रेय बंगला साहित्य को जाता है। गुरुदेव और टैगोर की निम्न पंक्तियाँ इसकी अनूठी मिसाल हैं।

जागो, मेरे मन, जागो इस पावन तीर्थ स्थल में,
भारत है यह मानवता-सागर का तट जो।
ऊर्ध्वबाहु जयघोष कर रहा मैं देवोपम मानव का,
क्या जाने कब किस पुकार पर आर्य, द्रविड,
चीनी, मंगोल, हूण, पठान, मुगल,
बढ़ते आए, मिल एक बने इस सागर में,
अब पश्चिम ने भी तो खोल दिए हैं द्वार,
लेना-देना शुरू किया—इस मानवता तट से,
लौटा नहीं कभी कोई भी खाली हाथ।

दरअसल पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्तियों का प्रभाव बंगला साहित्य पर पहले पड़ा। इसके पश्चात इसकी अनुगूंज अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में क्रमशः धीरे-धीरे हुई। यह युग परिवर्तनों का था, जहाँ पर कि साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाज, मानवीय मूल्यों आदि के क्षेत्र में बदलाव के स्वर दिखाई दे रहे थे। पुरानी जीवन-शैली एवं मूल्यों की जगह नवीनता के आग्रह बढ़ रहे थे। मध्ययुगीन विचारधारा एवं परम्परा को चुनौती दी जा रही थी। समाज सुधारवादी संस्थाओं की स्थापना के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। भारतीय भाषाओं

के साहित्य ने इसे और गति प्रदान की। आधुनिक नवजागरण, पुनर्जागरण, स्वच्छंतावाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना, प्रगति एवं प्रयोगवाद तथा समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों और विचारधाराओं का प्रभाव देर-सबेर लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य पर पड़ा। हिंदी के नागार्जुन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विनोद कुमार शुक्ल, असद जैदी, विष्णु नागर, ऋतुराज, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई एवं अन्य भाषाओं के सुरजीत पातर, यू. आर. अनंतमूर्ति, पी. लंकेश, चन्द्रशेखर पाटिल, एच. एस. शिवप्रकाश, निदा फाजली, के.जी. शंकर पिल्लै आदि रचनाकारों की रचनाओं में कथ्य-शिल्प के नए तेवर देखे जा सकते हैं। बंगाल के मुरारि मुखोपाध्याय की कविता 'प्रेम' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

जो जाए प्यार तो, चाँद मत बन जाना,
हो सके तो बनकर आ जाना सूरज।
मैं उसकी गर्मी ले लूंगा, और
प्रकाशित करूंगा, अंधेरे जंगल।
हो जाए प्यार तो नदी नहीं बन जाना,
आ सके तो आना, बाढ़ की तरह।
मैं उसका आवेग लेकर, तोड़ूंगा बांध निराशा के।

रूमानी कविता में प्रेम के लिए आमतौर पर प्रयुक्त परंपरागत प्रतीकों चांद, नदी, फूल, तारे, चिड़ियां आदि को खारिज कर उष्ण सूर्य और बाड की कामना करता है जो कि अंधेरे जंगल को प्रकाशित करें और क्रांतिकारी आवेग से निराशा के बांध तोड़ दें। यही तेवर पंजाबी कवि पाश का भी है–

नहीं अब मत सोचो लालिमा के प्यारेपन पर जब गांव में दीखे सूर्यास्त।
अब तो मैं भी नहीं चिंता करता कि उसे कैसा लगता होगा, जब चांद उसके ओसारे से होकर गुजरता हो।

मराठी, गुजराती, हिंदी, पंजाबी और तेलुगू की दलित कविता और कन्नड की 'बडाय' कविता एक अन्य विरोधी काव्य समुदाय की सृष्टि करती है। अरुण कांबले, यशवंत मनोहर, अर्जुन डांगले, जे. वी. पवार, नामदेव ढसाल, दया पवार, भुजंग मेश्राम, मीना गजभिए आदि मराठी के, योसेफ मैकवान, जयंत परमार, भंगल राठौर, किसन सोसा, प्रवीण गदवी, राजू सोलंकी आदि गुजराती के और सिद्धलिंगय्या कन्नड के प्रमुख दलित कवि माने जाते हैं। आज जिस दलित विमर्श की चर्चा खूब जोरों से हो रही है उसकी जबर्दस्त गुहार सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में हो रही है। यही हमारी सामासिक संस्कृति का आधार है। वस्तुतः ब्राह्मणवादी काव्यशास्त्र को दलित कविता अस्वीकार करती है और औचित्य, संतुलन, अल्पकथन आदि शास्त्रीय मूल्यों को धत्ता बताती है। राजनीति के क्षेत्र में मायावती के विचार दलित वर्ग के आक्रोश को व्यक्त करते हैं लेकिन इसमें राजनीति ज्यादा दलित वर्ग की चिंता कम दृष्टिगोचर होती है।

यह सही है कि इनके आगमन से दलित वर्ग को एक नई शक्ति मिली है। दलित कविता के मराठी प्रतिनिधि बाबूराव बागुल का कहना है–

तुमसे जो भूल हुई इस देश में पैदा होने की,
उसका परिमार्जन तो ऐसे ही होगा
कि देश छोड़ो या युद्ध करो।

गुजराती दलित कवि यशवंत बघेला लिखते हैं कि–

शताब्दियों के पत्थर एक ढेर में हम पर पड़ रहे।
आंसुओं के पिरामिड के नीचे ममियां हैं हम आज।
चीत्कारों से हैं ठुंसे पड़े, भट्टियों में नियति गढती है हमको।

हमारी सामाजिक वर्ण-व्यवस्था में विभिन्न जातियों के विचारों, संस्कारों, रीति-रिवाजों, मनोवृत्तियों, मान्यताओं विजातीय प्रेम-संबंधों, स्वार्थग्रस्त, भ्रष्ट, ढोंगी चरित्रों आदि का भारतीय साहित्य में विशद रूप से चित्रण हुआ है। उदाहरणस्वरूप विभिन्न परिवेशों में रचित 'गोदान' एवं 'संस्कार' उपन्यासों में ब्राह्मण समाज के संस्कार, सोच-समझ एवं उनकी मानसिकता की एकरूपता को देखा जा सकता है। इसी प्रकार मजदूर और दलित समाज के हल्कू, घीसू माधव, होरी, धनिया आदि का तथा उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के जीवन-परिवेश एवं उनकी सोच-समझ का किसी एक भाषा में नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में चित्रण हुआ है।

भाषा संस्कृति की संवाहिका होती है। जिस प्रकार राष्ट्र किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति अथवा भाषा की विभिन्नता से ऊपर होता है, उसी प्रकार भाषा भी। इतिहास साक्षी है कि किसी भी देश की जातीय भाषा को न तो दबाया जा सका और न ही उसे बलपूर्वक समाप्त किया जा सका।

गोवा में पुर्तगालियों ने कोंकणी भाषा को मिटा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी किन्तु वह अपनी अस्मिता बनाए रखने में सक्षम रही। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य ने प्रेरणा दी। पालि तथा अपभ्रंश साहित्य का विकास वैदिक धर्म विरोधी बौद्ध तथा जैन धर्मों के उदय के कारण हुआ। इन साहित्यों ने परवर्ती संस्कृत साहित्य की तरह अपने आपको जन-सामान्य की भावनाओं और अनुभूतियों से अछूता नहीं रखा।

डॉ. राजकिशोर पाण्डेय का मानना है कि–"सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति की दृष्टि से दक्खिनी साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दक्खिनी के कवियों और लेखकों ने अपनी भाषा में संस्कृत के तत्सम और तद्भव रूपों के साथ स्थानीय भाषाओं के शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों को अपनाया। दक्खिनी में तेलुगू, मराठी और कन्नड के शब्द पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं और उसमें बहुत से ऐसे मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है जो स्थानीय भाषाओं से अनुदित हैं। दक्खिनी के अधिकांश साहित्यकार मुसलमान हैं। किंतु उन्हें भारतीय रीति-रिवाजों हिंदू-त्यौहारों एवं परंपराओं का अच्छा ज्ञान था।"

हिंदी साहित्य में अमीर खुसरो, रहीम, रसखान, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि मुसलमान रचनाकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से सामासिक संस्कृति की अद्भुत मिसाल कायम की है। आज संस्कृति को विभिन्न समुदायों से जोड़कर अलग से देखा जा रहा है। लोहिया जी हिंदू को भारतीय का पर्याय नहीं मानते थे। भारत में बसने वाले सारे भारतीय हैं, भले ही उनके बीच क्षेत्रीय, भाषाई, जातीय, वर्णगत, धार्मिक आदि भिन्नताएँ हों। उनका मानना था कि सब भारतीयों की देश की संस्कृति में बराबर की हिस्सेदारी है और उनके विकास में सबका योगदान है।

भारतीय संस्कृत आचार्यों ने रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य आदि को काव्य की आत्मा मानते हुए काव्य के स्वरूप, लक्षण, रूप, हेतु, प्रयोजन, नायिका-भेद आदि की विस्तार से चर्चा की है। इसी प्रकार नाटक के स्वरूप एवं भेदों का भी उल्लेख किया गया है। इनका सबका प्रभाव भारतीय भाषाओं के साहित्य पर समग्रता से देखा जा सकता है। हमारे देश में लोक-साहित्य की पुरानी परंपरा विद्यमान है। किसी देश या जाति की संस्कृति की सही पहचान उसके लोक साहित्य से होती है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न मांगलिक अवसरों एवं अन्य पर्वों, त्यौहारों आदि पर गाए जाने वाले विभिन्न प्रांतों के लोक गीतों में भी अद्भुत साम्य है। भाषाई आवरण हटा दें तो उनमें लगभग एकरूपता दिखाई देती है। यह एकसूत्रता हमारी सांस्कृतिक विरासत की पहचान है।

वर्तमान दौर वैश्वीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, सम्प्रदायवाद, दूषित राजनीति, क्षेत्रीयता आदि का है। इनके कारण हमारी सामासिक संस्कृति पर आँच आ रही है। वस्तुतः जिन मूल्यों को हमने आधार स्वरूप सामासिक संस्कृति की नींव की ईंट मानी थी अब उनमें ही नोंनछी लग रही है। जीवनमूल्य 'यूज एण्ड थ्रो' की भाँति प्रयुक्त हो रहे हैं। इसके कारण वर्तमान दौर में सामाजिक जीवन का ढांचा चरमरा रहा है। किसी विचारक ने ठीक ही कहा है कि "जैसे-जैसे समाज में शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे सत्यवादियों की संख्या घटती जाती है।" यह सही है कि शिक्षा और विज्ञान के प्रचार ने हमें उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है लेकिन उसी अनुपात में मानवतावादी मूल्यों का हनन भी हो रहा है। ऐसे में भारतीय भाषाओं के साहित्य की भूमिका बढ़ जाती है। साहित्य हमें संघर्ष और मानवता की सीख देता है और हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। यह गुरुतर कार्य भारतीय साहित्य ही कर सकता है। इससे हमारी सामासिक संस्कृति मजबूत होगी और साथ ही हमारी एकता।